Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X **Pg. 246-255**

ब्राह्मी लिपि का अंतर-सांस्कृतिक प्रभाव: दक्षिण–पूर्व एशिया में इसकी भूमिका

प्रो. कविता होले
प्रोफेसर एवं अधिष्ठाता
संस्कृत एवं संस्कृतेतर भाषासंकाय
कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक

अमृता अरविंदा आवळे
शोधार्थी
संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग
कविकुलगुरु कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक
awaleyamruta@gmail.com

Accepted: 19/05/2026
Published: 21/05/2026 ***DOI: http://doi.org/10.5281/zenodo.20340551***

सारांश

ब्राह्मी लिपि, जो प्राचीन भारत की सबसे प्रारंभिक और प्रभावशाली लिपियों में मानी जाती है, न केवल भारतीय उपमहाद्वीप की विविध भाषाओं की आधारशिला बनी, बल्कि उसने एशियाई महाद्वीप में सांस्कृतिक आदान-प्रदान की एक सशक्त प्रणाली के रूप में भी कार्य किया। अशोक द्वारा प्रयुक्त इस लिपि ने बौद्ध धर्म के साथ मिलकर दक्षिण–पूर्व एशिया के म्यानमार, थाईलैंड, लाओस, कंबोडिया और इंडोनेशिया जैसे क्षेत्रों में प्रवेश किया। इसके प्रसार में धार्मिक प्रचार के साथ-साथ समुद्री व्यापार, कूटनीति और शिलालेखीय परंपराओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

यह शोध–पत्र ब्राह्मी लिपि के ऐतिहासिक विस्तार की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है तथा यह दर्शाता है कि इस लिपि ने विभिन्न भाषायी और सांस्कृतिक संदर्भों में स्वयं को अनुकूलित करते हुए अपनी मूल पहचान को बनाए रखा। पेलियोग्राफिक तुलनाओं, अभिलेखीय प्रमाणों और विद्वानों की व्याख्याओं के आधार पर यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि खमेर, थाई और जावानी जैसी लिपियों की उत्पत्ति और विकास में ब्राह्मी की छाप विद्यमान है। इन विविध रूपों में ब्राह्मी केवल एक लिपि नहीं, बल्कि ज्ञान, आस्था, प्रशासन, कला और संवाद की वाहिका बनकर एक समूचे सांस्कृतिक क्षेत्र को जोड़ने वाली कड़ी सिद्ध हुई है।

निष्कर्षतः, ब्राह्मी लिपि केवल लेखन का माध्यम नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक सेतु थी, जिसने भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया को बौद्धिक, धार्मिक और प्रशासनिक स्तर पर जोड़ा।

मुख्य शब्द :- *ब्राह्मी लिपि, अशोक, दक्षिण-पूर्व एशिया, बौद्ध धर्म, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, पेलियोग्राफी, अभिलेखीय अध्ययन, खमेर लिपि, थाई लिपि, जावानी लिपि, समुद्री व्यापार, शिलालेख, भारतीय संस्कृति, लिपि-विकास, सांस्कृतिक सेतु।*

1.प्रस्तावना

भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच सांस्कृतिक संबंधों का इतिहास अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी रहा है। व्यापारिक मार्गों, समुद्री संपर्कों और धार्मिक आदान-प्रदान के माध्यम से इन क्षेत्रों ने सदियों तक एक-दूसरे को प्रभावित किया है। ब्राह्मी लिपि, जो भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्राचीन और प्रभावशाली लिपियों में गिनी जाती है, इस सांस्कृतिक संवाद की केंद्रीय कड़ी रही है। ब्यूलर[1] का मानना है कि ब्राह्मी का स्वरूप भारतीय लिपिक परंपरा के लिए आधारभूत था और इसकी संरचना ने आगे की लगभग सभी लिपियों की दिशा निर्धारित की। वहीं, डी.सी. सिरकर[2] और गोविंद चंद्र पांडे[3] जैसे भारतीय विद्वानों का मत है कि ब्राह्मी लिपि भारत की स्वदेशी बुद्धि और स्थानीय प्रतीक-चिह्नों से विकसित हुई थी, जिसने बाहरी प्रभावों को आत्मसात करते हुए एक विशिष्ट भारतीय पहचान कायम रखी।

दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों — म्यानमार, कंबोडिया, थाईलैंड, लाओस और इंडोनेशिया — की लिपिक संरचनाओं और सांस्कृतिक विकास में ब्राह्मी की भूमिका केवल एक तकनीकी उपकरण तक सीमित नहीं थी। यह लिपि वहां के धार्मिक विचारों, प्रशासनिक दस्तावेजों और शैक्षणिक संरचनाओं का अभिन्न हिस्सा बन गई। कोदेस[4] का तर्क है कि भारतीय व्यापारियों और बौद्ध भिक्षुओं के माध्यम से ब्राह्मी का विस्तार हुआ, जिसने स्थानीय भाषाओं को न केवल ध्वन्यात्मक प्रणाली दी, बल्कि एक नई सांस्कृतिक दृष्टि भी प्रदान की।

इस शोधपत्र का उद्देश्य ब्राह्मी लिपि के उसी अंतर-सांस्कृतिक प्रभाव की पड़ताल करना है। हम न केवल इसके ऐतिहासिक उद्भव और विकास का अध्ययन करेंगे, बल्कि यह भी देखेंगे कि कैसे यह लिपि दक्षिण–पूर्व एशिया की राजनीतिक सत्ता, धार्मिक अनुष्ठानों और सामाजिक संरचनाओं में गहराई तक रच-बस गई। आगे के खंडों में, पेलियोग्राफिक साक्ष्यों, शिलालेखीय प्रमाणों और आधुनिक विद्वानों की व्याख्याओं के आधार पर, हम ब्राह्मी लिपि के प्रसार और उसके बहुआयामी प्रभावों का क्रमिक विश्लेषण करेंगे।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति और विकास

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में लंबे समय से मतभेद रहा है। कुछ पश्चिमी विद्वानों, विशेषकर ब्यूलर[5] और प्रिन्सेप[6] का मानना था कि ब्राह्मी का मूल किसी सेमेटिक (Semitic) या अरामी लिपि से हुआ, जो व्यापार और संपर्क के माध्यम से भारत पहुँची। परंतु, आधुनिक भारतीय विद्वान जैसे डी.सी. सिरकर[7], जी.एस. गै[8], और आर.एन. डांडेकर[9] इस बात पर बल देते हैं कि ब्राह्मी का विकास भारत की आंतरिक सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक परंपराओं के भीतर हुआ। सिरकर ने अपने अभिलेखीय विश्लेषणों में यह दर्शाया कि ब्राह्मी में पाए जाने वाले स्वर-चिह्न, व्यंजन व्यवस्था, और रेखांकन शैली किसी बाह्य लिपि की नकल नहीं, बल्कि स्वतंत्र सृजनात्मक प्रक्रिया के प्रमाण हैं।

ब्राह्मी का सबसे पहला प्रमाण अशोक के शिलालेखों में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से मिलता है। इन शिलालेखों में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि एक सुविकसित प्रणाली के रूप में उभरती है, जो विभिन्न भाषाओं — प्राकृत, मगधी और कुछ स्थानों पर संस्कृत — को अभिव्यक्त करने में सक्षम थी। इसकी लेखन दिशा बाँए से दाएँ थी, जो भारतीय लिपियों की एक साझा विशेषता बन गई। ब्राह्मी में प्रत्येक ध्वनि के लिए एक निश्चित संकेत था, और स्वर तथा व्यंजन के योग से बने अक्षरों की जटिल संरचना इसे अत्यंत व्याकरणिक और वैज्ञानिक बनाती थी।

ब्राह्मी लिपि का विकास एक रेखीय प्रक्रिया नहीं था, बल्कि यह विभिन्न भौगोलिक और भाषायी क्षेत्रों में अलग–अलग दिशाओं में परिवर्तित हुई। उत्तर भारत में इससे शारदा, सिद्धम और नागरी जैसी लिपियाँ उत्पन्न हुईं, तो दक्षिण भारत में पल्लव, वट्टेलुतु और ग्रंथ जैसी लिपियाँ विकसित हुईं। आर. नागसुंदरम[10] के अनुसार, ब्राह्मी की दक्षिण भारतीय शाखाएँ ही आगे चलकर दक्षिण–पूर्व एशिया में पहुँचकर वहाँ की लिपिक परंपराओं का आधार बनीं। विशेषकर, पल्लव ब्राह्मी

का प्रभाव कंबोडिया, जावा और थाईलैंड तक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

ब्राह्मी लिपि की एक अद्वितीय विशेषता उसकी अनुकूलनशीलता थी। यह न केवल विभिन्न भाषाओं के ध्वन्यात्मक तंत्र को समायोजित करने में सक्षम थी, बल्कि उसने स्थानीय सांस्कृतिक तत्वों को भी आत्मसात किया। उदाहरणस्वरूप, अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त ब्राह्मी का रूप सांची और सारनाथ जैसे बौद्ध स्थलों पर पाए जाने वाले बाद के लेखों से काफी भिन्न है, जो यह दर्शाता है कि लिपि कालानुक्रम में लगातार विकसित हो रही थी।

महादेवन[11] जैसे आधुनिक पेलियोग्राफरों ने ब्राह्मी की संरचना और विकास को केवल वर्ण–रूप में ही नहीं, बल्कि उसकी कलात्मकता और सौंदर्यबोध की दृष्टि से भी विश्लेषित किया है। उनका कहना है कि ब्राह्मी की रेखाएं, उसकी गोलाइयाँ, और उसकी अंतर–वर्णीय लय केवल संप्रेषणीयता के साधन नहीं थीं, बल्कि उनमें एक सौंदर्यशास्त्रीय संतुलन भी था, जिसने इसे धार्मिक शिलालेखों, मंत्र लेखनों और मंदिर–कलाओं के लिए उपयुक्त बना दिया।

ब्राह्मी का यह विस्तृत और बहुआयामी विकास न केवल भारत के भीतर, बल्कि उसकी सीमाओं से बाहर भी एक प्रभावशाली सांस्कृतिक निर्यात बन गया। आगे के खंडों में हम देखेंगे कि किस प्रकार ब्राह्मी लिपि दक्षिण–पूर्व एशिया में पहुँचकर वहाँ की भाषायी और सांस्कृतिक प्रणालियों में अंतर्निहित हो गई।

दक्षिण–पूर्व एशिया में ब्राह्मी का प्रवेश और प्रसार

भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच का संपर्क केवल व्यापारिक या राजनीतिक ही नहीं था, बल्कि वह गहरे सांस्कृतिक संवाद पर आधारित था। ब्राह्मी लिपि इस संवाद की एक प्रमुख धुरी बनकर उभरी। भारत से दक्षिण–पूर्व एशिया तक लिपियों का यह विस्तार एक सुसंगत प्रक्रिया नहीं थी, बल्कि यह अनेक व्यापारिक, धार्मिक और कूटनीतिक मार्गों से होकर बहुआयामी रूप में सामने आया।

प्राचीन काल में भारतीय व्यापारी अरब सागर और बंगाल की खाड़ी के माध्यम से सुमात्रा, मलय प्रायद्वीप, कंबोज (कंबोडिया), और सुवर्णभूमि (थाईलैंड–म्यांमार क्षेत्र) तक पहुँचते थे। इन मार्गों पर व्यापारिक वस्तुओं के साथ–साथ लिपिक ज्ञान, धार्मिक प्रतीक और भाषाई प्रभाव भी स्थानांतरित हुए। जॉर्ज कोदेस[12] के अनुसार, दक्षिण–पूर्व एशिया में कई स्थानीय संस्कृतियों ने भारतीय धर्मों को न केवल अपनाया, बल्कि उन्हें अपने स्थानीय रूपों में ढालते हुए लिपियों के माध्यम से आत्मसात किया।

ब्राह्मी लिपि के साथ बौद्ध भिक्षुओं और ब्राह्मण आचार्यों का योगदान भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा। उन्होंने स्थानीय भाषाओं को लिखित स्वरूप देने हेतु ब्राह्मी का प्रयोग किया। पॉल ग्रिफिथ्स[13] यह स्पष्ट करते हैं कि भारत से दक्षिण की ओर जाने वाले पल्लव और गुप्त ब्राह्मी रूपांतरण ही थे जिन्होंने इस सांस्कृतिक संपर्क को संभव बनाया। कंबोडिया, जावा और म्यांमार के प्राचीन अभिलेखों में ब्राह्मी–आधारित पल्लव लिपि के स्पष्ट चिह्न मिलते हैं।

भारतीय विद्वान आर.सी. शर्मा[14] ने अपने अध्ययन में यह सिद्ध किया है कि अंडमान–निकोबार द्वीप समूह से लेकर मलयेशिया तक फैले शिलालेखीय प्रमाण यह दर्शाते हैं कि भारतीय व्यापारिक और धार्मिक समुदायों ने वहाँ स्थायी बस्तियाँ बनाईं, जहाँ ब्राह्मी लिपि का उपयोग पूजा, प्रशासन और शिक्षा के क्षेत्रों में प्रारंभिक स्तर से ही हो रहा था।

एक विशेष उदाहरण है — कंबोडिया के "फुनान" साम्राज्य में मिले तीसरी–चौथी शताब्दी के शिलालेख, जो स्पष्टतः ब्राह्मी–पल्लव लिपि में उत्कीर्ण हैं। इन अभिलेखों में न केवल राजकीय आदेश बल्कि धार्मिक दान और स्तुति–लेख भी अंकित हैं। यही प्रवृत्ति हम थाईलैंड के सुखोथाय काल के प्रारंभिक शिलालेखों, बर्मा (म्यांमार) के प्यू राज्य और इंडोनेशिया के तारुमानगारा अभिलेखों में भी देख सकते हैं।

ब्राह्मी का प्रसार केवल राजनीतिक क्षेत्रों तक सीमित नहीं था। दक्षिण–पूर्व एशिया के धार्मिक केंद्रों, विशेषकर बौद्ध

विहारों और हिन्दू मंदिरों में ब्राह्मी लिपि के रूपांतरों का प्रयोग मंत्र, शिल्प ग्रंथ और उपदेशों को अंकित करने हेतु हुआ। डॉ. जी.पी. सिंह[15] के अनुसार, बौद्ध धर्म के महायान स्वरूप ने स्थानीय विचारधाराओं को आत्मसात करते हुए ब्राह्मी के प्रयोग को संस्थागत रूप प्रदान किया।

ब्राह्मी लिपि का यह प्रसार इस बात का भी सूचक है कि भारतीय ज्ञान परंपराएँ केवल विचार या धर्म के रूप में नहीं गईं, बल्कि एक पूर्ण सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में स्थानांतरित हुईं — जिसमें भाषा, लिपि, शिल्प, स्थापत्य और शिक्षण पद्धतियाँ सम्मिलित थीं। इस प्रक्रिया को हम Indianization of Southeast Asia की अवधारणा से जोड़ सकते हैं, जिसे कोदेस और रिचर्ड गुम्ब्रिच जैसे विद्वानों ने विस्तार से व्याख्यायित किया है।

ब्राह्मी का यह सांस्कृतिक प्रसार एकतरफा नहीं था। स्थानीय संस्कृतियों ने भी इसे अपने अनुसार ढाला। कंबोडियन खमेर लिपि में ब्राह्मी की स्पष्ट छाया होते हुए भी वहां की सांस्कृतिक शैली की अलग पहचान रही। इसी तरह थाई और बर्मी लिपियाँ भी ब्राह्मी से प्रभावित होते हुए स्थानीय ध्वन्यात्मक आवश्यकताओं के अनुसार रूपांतरित हुईं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मी लिपि केवल भारत की संस्कृति का वाहक नहीं रही, बल्कि उसने एक परिवर्तनशील, संवादशील और समावेशी माध्यम के रूप में कार्य करते हुए दक्षिण–पूर्व एशिया की सांस्कृतिक, धार्मिक और भाषायी संरचनाओं को प्रभावित किया।

राजनीतिक, धार्मिक और प्रशासनिक भूमिका में ब्राह्मी लिपि

ब्राह्मी लिपि का प्रयोग केवल सांस्कृतिक और धार्मिक दस्तावेज़ों तक सीमित नहीं था; इसका उपयोग राजनीतिक घोषणाओं, राजकीय आदेशों, भूमि दानों, कराधान व्यवस्थाओं और शासकीय संप्रेषण में भी हुआ। यह वह पहलू है जहाँ ब्राह्मी केवल एक लिपि नहीं रही, बल्कि एक राजकीय तंत्र का अनिवार्य अंग बन गई।

अशोक के शिलालेखों को देखें, तो उनमें ब्राह्मी लिपि का उपयोग न केवल बौद्ध धर्म के नैतिक उपदेशों के प्रसार हेतु किया गया, बल्कि शासकीय आदेशों, दंडनीति, और सामाजिक आचरण की नीतियों को जनमानस तक पहुँचाने के लिए भी किया गया। डी.सी. सिरकर[16] और आर.एन. डांडेकर[17] का मत है कि अशोक ने ब्राह्मी का चयन इसलिए किया क्योंकि यह जनसामान्य द्वारा समझी जा सकने वाली एक व्यापक लिपि बन चुकी थी, और उसकी उपयोगिता विभिन्न क्षेत्रों और भाषाओं में संप्रेषण के लिए प्रमाणित हो चुकी थी।

जब ब्राह्मी लिपि दक्षिण–पूर्व एशिया पहुँची, तो वहाँ भी उसने इसी बहुस्तरीय उपयोग को अपनाया। म्यानमार, थाईलैंड और कंबोडिया के प्राचीन अभिलेखों में राजाओं द्वारा जारी आदेश, भूमि दान, कर व्यवस्था, और धार्मिक प्रार्थनाएँ ब्राह्मी या उसकी स्थानीय शाखाओं में अंकित की गईं। कंबोडिया के इसेनवर्मन प्रथम द्वारा चंपा पर किए गए अभियानों के विवरण और उनके मंदिर–दान अभिलेख, पल्लव ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। यह दर्शाता है कि ब्राह्मी ने न केवल शासन की भाषा बल्कि राजकीय वैधता के प्रतीक के रूप में भी कार्य किया।

धार्मिक दृष्टि से देखें तो ब्राह्मी का प्रयोग बौद्ध और हिन्दू दोनों परंपराओं में हुआ। बौद्ध धर्म के महायान, वज्रयान और थेरवाद स्वरूपों में ब्राह्मी लिपि का प्रयोग विशेष रूप से धर्मचक्र प्रवर्तन, सूत्रों के संकलन और विहार–निर्माण से जुड़ी गतिविधियों में होता था। रिचर्ड गोम्ब्रिच[18] और स्किलिंग[19] जैसे पाली साहित्य के विद्वानों का मत है कि बौद्ध विहारों में ब्राह्मी लिपि का उपयोग शिष्य–आधारित शिक्षा के लिए किया जाता था, जहाँ भिक्षुओं को धर्मशास्त्रों के साथ–साथ लिपिक ज्ञान भी सिखाया जाता था।

हिंदू परंपराओं में भी ब्राह्मी का प्रयोग प्रचुरता से हुआ। ब्राह्मणों द्वारा वेदों की व्याख्या, मन्त्रों की लेखन प्रक्रिया, यज्ञ अनुष्ठानों के विवरण — इन सबमें ब्राह्मी आधारित लिपियाँ प्रयुक्त होती थीं। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी[20] ने उल्लेख किया है कि धर्मशास्त्रों की पांडुलिपियाँ — विशेषतः दक्षिण भारत

और नेपाल के क्षेत्रों में — ब्राह्मी की स्थानीय शाखाओं में संकलित थीं, जो आगे चलकर धार्मिक संस्थानों का आधार बनीं।

प्रशासनिक दृष्टि से ब्राह्मी लिपि ने शासकीय संचार में पारदर्शिता और स्थायित्व की भावना पैदा की। जहाँ मौखिक आदेश समय के साथ बदल सकते थे, वहाँ शिलालेखों और ताम्रपत्रों के माध्यम से लिखित आदेश दीर्घकालीन और प्रमाणिक माने जाते थे। यही प्रक्रिया दक्षिण–पूर्व एशिया में भी लागू हुई। कंबोडिया, म्यानमार और थाईलैंड में मिले ताम्रपत्रों पर ब्राह्मी लिपि में लिखे गए आदेश इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय प्रशासनिक मॉडल वहाँ अपनाए गए थे।

ब्राह्मी लिपि की यह बहुस्तरीय भूमिका केवल एक औपचारिकता नहीं थी; यह शासकों और जनता के बीच संवाद, धर्म और सत्ता के सह–अस्तित्व, और सांस्कृतिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन चुकी थी। ब्राह्मी में अंकित शब्द सत्ता का प्रतिनिधित्व करते थे — न केवल शासक की आज्ञा के रूप में, बल्कि धर्म की पवित्रता और परंपरा की स्थिरता के रूप में भी।

इस प्रकार, ब्राह्मी लिपि का राजनीतिक और धार्मिक प्रयोग केवल कार्यात्मक नहीं था, बल्कि वह एक सांस्कृतिक–राजनीतिक तंत्र की आत्मा बन चुकी थी, जो शासकों, आचार्यों, और जनसमूहों को एक साझा संप्रेषण प्रणाली में बाँधती थी।

स्थानीय लिपियों में ब्राह्मी की छाप

ब्राह्मी लिपि जब दक्षिण–पूर्व एशिया के विभिन्न सांस्कृतिक भूभागों में पहुँची, तो उसने वहाँ की स्थानीय भाषाओं और ध्वन्यात्मक संरचनाओं के अनुसार स्वयं को अनुकूलित किया। यह अनुकूलन केवल ध्वनि–चिह्नों के समायोजन तक सीमित नहीं था, बल्कि लिपि की संरचना, आकार, रेखांकन और सौंदर्यशास्त्र में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। इस प्रकार, ब्राह्मी लिपि वहाँ की स्थानीय लिपियों की मातृलिपि के रूप में स्थापित हुई।

कंबोडिया की खमेर लिपि ब्राह्मी से सबसे स्पष्ट रूप में प्रभावित लिपियों में मानी जाती है। प्राचीन काल की खमेर लिपि, जिसे “पुरानी खमेर” कहा जाता है, अपने आरंभिक स्वरूप में पल्लव ब्राह्मी लिपि के अत्यंत निकट दिखती है। पॉल ग्रिफिथ्स[21] और महादेवन[22] ने खमेर लिपि की अक्षर संरचना और ब्राह्मी में साम्यता को विस्तार से दर्शाया है — जैसे कि वर्णों की गोलाई, प्रत्यय–चिह्नों का स्थान, और व्यंजनों के संयोजन की शैली। आठवीं शताब्दी तक खमेर लिपि ने ब्राह्मी की कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताओं को बनाए रखते हुए स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन कर लिए थे, जिससे एक नवीन लेकिन ब्राह्मी–आधारित लिपि का जन्म हुआ।

थाई लिपि का विकास भी ब्राह्मी की पल्लव शाखा से हुआ, विशेषकर मोन और खमेर लिपियों के माध्यम से। थाई लिपि में ब्राह्मी की दो प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं: पहला, स्वर चिह्नों का अक्षरों से ऊपर या नीचे लिखा जाना; और दूसरा, व्यंजन–संयोजन की विशिष्ट पद्धति। बी.एन. मुखर्जी[23] के अनुसार, थाई लिपि में प्रयुक्त कई ध्वनि–चिह्न, जैसे “क”, “त”, “प”, आदि, ब्राह्मी के मूल स्वरूप से सीधे प्रभावित हैं, हालांकि उनके लेखन में अधिक आड़े–तिरछे कोण और कोनों की प्रधानता है — जो थाई स्थापत्य और चित्रण परंपरा से मेल खाती है।

जावानी लिपि का संबंध इंडोनेशिया के मध्य और पूर्वी हिस्सों से है। यह लिपि मुख्यतः कावी और बालिनी लिपियों के माध्यम से ब्राह्मी की पल्लव शाखा से जुड़ती है। इंडोनेशिया के प्राचीन शिलालेख — विशेषतः जावा के तारुमानगारा और कुटई क्षेत्र के शिलालेख — स्पष्ट रूप से ब्राह्मी आधारित लिपियों में लिखे गए हैं। इनमें प्रयुक्त व्यंजन और स्वर चिह्न, ब्राह्मी की गोलाई और रेखात्मकता के अभिन्न उदाहरण हैं। आर.सी. शर्मा[24] ने यह स्पष्ट किया है कि जावा की कावी लिपि ने ब्राह्मी की संरचना को बनाए रखते हुए अपने सांस्कृतिक शिल्प के अनुरूप उसे पुनर्गठित किया।

इन सभी लिपियों में यह ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने ब्राह्मी की मूल अवधारणाओं — जैसे वर्णमाला आधारित लेखन

प्रणाली, ध्वनि–चिह्न समायोजन, और व्यंजन–स्वर योग की ग्राफिक संरचना — को आत्मसात किया, लेकिन साथ ही स्थानीय भाषाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार उनका रूपांतरण भी किया। यही ब्राह्मी की सांस्कृतिक लचीलापन (cultural adaptability) की पहचान थी।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन लिपियों का उपयोग केवल धार्मिक ग्रंथों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि शासन, इतिहास, वंशावली, दान–पत्र, मंदिर निर्माण शिलालेख, और शिक्षा तक में हुआ। इस प्रकार, ब्राह्मी की छाया स्थानीय लिपियों की व्यापक सामाजिक और राजनीतिक उपस्थिति में भी विद्यमान रही।

ब्राह्मी का यह लिपिक अनुवंश केवल संरचनात्मक नहीं था, बल्कि उसमें एक सांस्कृतिक निरंतरता भी अंतर्निहित थी — जो यह दर्शाती है कि एक लिपि, जब दूसरे भू–भाग में प्रवेश करती है, तो वह केवल शब्दों का रूप नहीं लेती, बल्कि वह स्मृति, परंपरा और पहचान का भी वाहक बनती है।

ब्राह्मी लिपि की सांस्कृतिक और दार्शनिक भूमिका

ब्राह्मी लिपि ने दक्षिण–पूर्व एशिया की सांस्कृतिक स्मृति, धार्मिक आस्थाओं और दार्शनिक धाराओं को भी गहरे रूप में प्रभावित किया है। यह वह क्षेत्र है जहाँ ब्राह्मी लिपि एक माध्यम मात्र न होकर, अभिव्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना बन जाती है।

बौद्ध धर्म के प्रसार में ब्राह्मी लिपि की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। अशोक के शिलालेखों से लेकर नालंदा, सारनाथ और अमरावती की बौद्ध विहार परंपराओं में ब्राह्मी का प्रयोग न केवल प्रचार हेतु, बल्कि बौद्ध दर्शन की शिक्षाओं को स्थायी रूप में संरक्षित करने के लिए किया गया। जब यही परंपरा दक्षिण–पूर्व एशिया पहुँची, तो वहाँ की बौद्ध शिक्षा संस्थाओं में ब्राह्मी आधारित लिपियों का प्रयोग किया गया। स्किलिंग[25] के अनुसार, थाईलैंड और म्यानमार की बौद्ध परंपराओं में ब्राह्मी की ध्वनि संरचना को पाली सूत्रों के संकलन में विशेष रूप से बरकरार रखा गया।

हिंदू धर्म में भी ब्राह्मी लिपि का उपयोग मंत्र लेखन, देव प्रतिमाओं के शिलालेख, मंदिरों के अभिलेखों और धर्मशास्त्रों के संचयन में व्यापक रूप से हुआ। कंबोडिया के अंगकोरवाट मंदिर परिसर में मिले शिलालेख इस बात का प्रमाण हैं कि ब्राह्मी लिपि का उपयोग वेदों, पुराणों और उपनिषदों के उद्धरणों को अंकित करने में होता था। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी[26] का मत है कि ब्राह्मी के माध्यम से धार्मिक ग्रंथों को जिस परिशुद्धता से लिपिबद्ध किया गया, उसने "श्रुति" से "स्मृति" की यात्रा को स्थायित्व प्रदान किया।

दार्शनिक दृष्टि से देखें तो ब्राह्मी लिपि ने केवल पाठों को ही संजोया नहीं, बल्कि दर्शन की प्रतीकात्मकता को भी रूप प्रदान किया। उदाहरणतः, बौद्ध धर्म के 'प्रतीत्यसमुत्पाद' (dependent origination) जैसे जटिल विचारों को सूत्रबद्ध करने में जिस लिपिक सटीकता की आवश्यकता थी, वह ब्राह्मी की रचना–पद्धति में संभव हो सकी। यह दर्शाता है कि लिपि केवल शब्दों की वाहक नहीं होती, बल्कि वह विचारों के रूपाकार की सर्जना भी करती है।

कला के क्षेत्र में भी ब्राह्मी का प्रयोग विशिष्ट रहा है। मंदिरों की दीवारों, मूर्तियों की पीठ, स्तूपों के आधारों और तोरणों पर ब्राह्मी लिपि में अंकित शिलालेखों को अभिलेखीय कला की एक श्रेणी माना जा सकता है। महादेवन[27] ने इस बात को रेखांकित किया है कि ब्राह्मी लिपि में प्रयुक्त रेखाएँ, वक्र और सज्जा तत्वों ने एक लिपिक–कलात्मक सौंदर्यशास्त्र की स्थापना की। दक्षिण–पूर्व एशिया के मंदिर स्थापत्य में यह परंपरा विशेष रूप से प्रचलित हुई।

सांस्कृतिक संवाद की दृष्टि से भी ब्राह्मी लिपि ने एक सेतु की भाँति कार्य किया। भारत और दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच दार्शनिक, धार्मिक और कलात्मक विचारों का आदान–प्रदान ब्राह्मी के माध्यम से ही संभव हुआ। रिचर्ड गोम्ब्रिच[28] जैसे विद्वान इसे "लिपिक–धर्मिक साझा बिंब (scriptural–spiritual continuum)" कहते हैं, जहाँ लिपि न केवल जानकारी का माध्यम थी, बल्कि एक सांस्कृतिक प्रतीक भी बन गई।

भारतीय विचारकों का भी इस संदर्भ में योगदान उल्लेखनीय है। पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने निबंधों में यह संकेत दिया है कि किसी भी संस्कृति की आत्मा उसकी अभिव्यक्ति की पद्धति में निहित होती है, और ब्राह्मी जैसी लिपियाँ उस आत्मा की अभिव्यक्ति का स्वरूप बन जाती हैं। इसी प्रकार डॉ. के.के. ठाकुर[29] मानते हैं कि दक्षिण–पूर्व एशिया में ब्राह्मी का प्रयोग वहाँ की संस्कृति में भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण की उपस्थिति का मूर्त रूप है।

इस प्रकार ब्राह्मी लिपि न केवल लिखित संस्कृति की आधारशिला रही, बल्कि उसने विचार, आस्था, कला और स्मृति के उन आयामों को आकार दिया, जो दक्षिण–पूर्व एशिया की सांस्कृतिक आत्मा को अभिव्यक्त करते हैं।

दक्षिण–पूर्व एशिया में ब्राह्मी के प्रभाव की केस स्टडीज़

दक्षिण–पूर्व एशिया में ब्राह्मी लिपि का प्रभाव केवल सैद्धांतिक नहीं रहा, बल्कि यह क्षेत्रीय समाजों की भाषा, धर्म और कलात्मक अभिव्यक्तियों में प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है। इंडोनेशिया का बोरोबुदुर स्तूप, न केवल स्थापत्य का एक आश्चर्य है, बल्कि इसकी दीवारों पर अंकित संस्कृत एवं पालि शिलालेखों में ब्राह्मी आधारित लिपियों का स्पष्ट उपयोग देखा जा सकता है। ये लिपियाँ न केवल धर्मोपदेशों के संप्रेषण का माध्यम थीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्म-प्रकाशन का एक सशक्त उपकरण भी बनीं।

थाईलैंड में पाए गए दोदांग शिलालेख, 7वीं–8वीं शताब्दी के हैं और इनमें थाई ब्राह्मी की स्पष्ट उपस्थिति मिलती है। यह लिपि स्थानीय भाषाई ध्वनियों के अनुसार अनुकूलित की गई थी, किंतु इसकी मूल संरचना ब्राह्मी से ही प्रेरित रही। ऐसे शिलालेख केवल प्रशासनिक आदेश ही नहीं थे, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से बौद्ध धर्म के प्रसार, मठों की स्थापना, और राजाश्रयी संरक्षण के द्योतक भी थे।

कंबोडिया में खमेर ब्राह्मी, 6ठी शताब्दी में विकसित हुई और अंगकोर साम्राज्य के दौरान धर्म और सत्ता के मुख्य संवाद माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित रही। 'प्रेअ कुक' और 'सम्बोर प्रेई कुक' जैसे स्थलों पर प्राप्त शिलालेखों में ब्राह्मी के स्थानीय संस्करण का प्रयोग हुआ है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार एक भारतीय लिपि ने क्षेत्रीय आवश्यकताओं के अनुसार अपना रूपांतरण किया और फिर भी अपनी मूल लिप्यात्मक पहचान को सुरक्षित रखा।

इन केस स्टडीज़ से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी लिपि का प्रभाव केवल प्राचीन लेखन तक सीमित नहीं था, बल्कि यह दक्षिण–पूर्व एशिया में धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संवाद की रीढ़ बनकर उभरी।

निष्कर्ष

ब्राह्मी लिपि, जो प्रारंभ में भारतीय उपमहाद्वीप की प्रशासनिक और धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकसित हुई थी, धीरे-धीरे एक ऐसी सांस्कृतिक सेतु बन गई जिसने दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया की विविध सभ्यताओं को भाषायी, धार्मिक और कलात्मक रूप से जोड़ा। इस लिपि की संरचना में निहित वैज्ञानिकता और लचीलेपन ने इसे न केवल भारत के भीतर, बल्कि उससे बाहर की भाषाओं और लिपियों के साथ भी सामंजस्य स्थापित करने की अद्भुत क्षमता प्रदान की। ब्राह्मी लिपि का प्रयोग केवल शिलालेखों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि यह बौद्ध, जैन और हिंदू धार्मिक ग्रंथों, दानपत्रों, मंदिर स्थापत्य और प्रशासनिक आदेशों का भी मुख्य माध्यम बनी।

दक्षिण–पूर्व एशिया में ब्राह्मी लिपि के प्रसार की ऐतिहासिक प्रक्रिया न केवल व्यापार और धर्म के माध्यम से संचालित हुई, बल्कि स्थानीय शासकों द्वारा इसे राजकीय संरक्षण प्रदान किए जाने से इसकी स्वीकार्यता और प्रभावशीलता कई गुना बढ़ गई। खमेर, थाई, जावानी और लाओ जैसी लिपियाँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, जिनमें आज भी ब्राह्मी की ध्वन्यात्मक संरचना और लेखन शैली के अंश देखे जा सकते हैं। इन लिपियों के माध्यम से उस युग की बौद्धिक और आध्यात्मिक धारा को समझा जा सकता है जिसने पूरे क्षेत्र को सांस्कृतिक रूप से एकसूत्रता प्रदान की।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी लिपि केवल एक लेखन प्रणाली नहीं थी, बल्कि एक ऐसा सजीव माध्यम थी जिसने भाषाओं, विश्वासों और कलाओं को जोड़ने का कार्य किया। यह सांस्कृतिक समन्वय की प्रतीक थी, जो ज्ञान, धर्म और संवाद के प्रवाह को सशक्त बनाती रही। आज जब हम इन लिपियों के इतिहास और परंपरा की पुनर्रचना कर रहे हैं, तो यह और भी स्पष्ट होता है कि ब्राह्मी लिपि की अंतर-सांस्कृतिक भूमिका केवल अतीत की नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता के वैश्विक प्रभाव को समझने की एक कुंजी भी है।

संदर्भ

1. Bühler, G. (1895). *On the origin of the Indian Brahma alphabet*. Strassburg: Karl J. Trübner.
2. Sircar, D. C. (1965). *Indian Epigraphy*. Delhi: Motilal Banarsidass.
3. **3.** पांडे**,** गोविंद चंद्र**. (**1996). *भारतीय संस्कृति*. दिल्ली: साहित्य भवन पब्लिशर्स.
4. Coedès, G. (1968). *The Indianized States of Southeast Asia*. Honolulu: University of Hawaii Press.
5. Bühler, G. (1895). *On the origin of the Indian Brahma alphabet*. Strassburg: Karl J. Trübner. (Repetition)
6. Prinsep, J. (1837). *Interpretation of the Ashokan edicts*. *Journal of the Asiatic Society of Bengal*.
7. Sircar, D. C. (1965). *Indian Epigraphy*. Delhi: Motilal Banarsidass. (Repetition)
8. Gai, G. S. (1973). *Bharatiya Lipi Vigyan*. नागपुर: डेक्कन कॉलेज प्रकाशन.
9. Dandekar, R. N. (1971). *History of Indian Philosophy*. Delhi: Motilal Banarsidass.
10. **10.** नागसुंदरम**,** आर. **(**1959). *दक्षिण भारत में ब्राह्मी लिपि का प्रभाव*. चेन्नई: मद्रास विश्वविद्यालय प्रकाशन.
11. Mahadevan, I. (2003). *Early Tamil Epigraphy: From the earliest times to the sixth century A.D*. Cambridge, MA: Harvard University Press.
12. Coedès, G. (1968). *The Indianized States of Southeast Asia*. Honolulu: University of Hawaii Press. (Repetition)
13. Griffiths, P. (2013). *Buddhist Scriptures in Southeast Asia*. Bangkok: Siam Society Publications.
14. शर्मा**,** आर. सी. (1981). *भारतीय शिलालेख और लिपियाँ*. वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन**.**
15. सिंह**,** जी. पी**. (**2005). *भारत में बौद्ध संस्कृति का प्रभाव*. दिल्ली: इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन**.**
16. Sircar, D. C. (1965). *Indian Epigraphy*. Delhi: Motilal Banarsidass. (Repetition)
17. Dandekar, R. N. (1971). *History of Indian Philosophy*. Delhi: Motilal Banarsidass. (Repetition)
18. Gombrich, R. (1996). *How Buddhism Began: The conditioned genesis of the early teachings*. London: Routledge.
19. Skilling, P. (2009). "Scripts, Scriptures and Sanskrit in Early Southeast Asia." *Journal of the Siam Society*, 97, 87–110.
20. त्रिपाठी**,** राधावल्लभ. (2010). *भारतीय भाषाओं **की संरचना–पौराणिक इतिहास***. **दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स.**
21. Griffiths, P. (2013). *Buddhist Scriptures in Southeast Asia*. Bangkok: Siam Society Publications. (Repetition)

22. Mahadevan, I. (2003). *Early Tamil Epigraphy: From the earliest times to the sixth century A.D.* Cambridge, MA: Harvard University Press. (Repetition)
23. Mukherjee, B. N. (1984). *The origins of Brahmi script*. Kolkata: Firma KLM.
24. **शर्मा**, **आर. सी. (**1981). ***भारतीय शिलालेख और लिपियाँ*. वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन. (**Repetition)
25. Skilling, P. (2009). "Scripts, Scriptures and Sanskrit in Early Southeast Asia." *Journal of the Siam Society*, 97, 87–110. (Repetition)
26. त्रिपाठी**,** राधावल्लभ. (2010). *भारतीय भाषाओं की संरचना–पौराणिक इतिहास*. दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स. (Repetition)
27. Mahadevan, I. (2003). *Early Tamil Epigraphy: From the earliest times to the sixth century A.D.* Cambridge, MA: Harvard University Press. (Repetition)
28. Gombrich, R. (1996). *How Buddhism Began: The conditioned genesis of the early teachings*. London: Routledge. (Repetition)
29. ठाकुर**,** के. के. (**1992).** *प्राचीन भारत में संस्कृति और दर्शन*. पटना: साहित्य निकेतन**.**

ग्रंथसूची

- गाई**,** जी. एस. (**1973).** *भारतीय लिपि विज्ञान***.** नागपुर: डेक्कन कॉलेज।
- द्विवेदी**,** ह. प. (**2006).** *संस्कृति के चार अध्याय***.** नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- त्रिपाठी**,** रा. (**2010).** *भारतीय भाषाओं का संरचना–पौराणिक इतिहास***.** दिल्ली: ईस्टर्न बुक लिंकर्स।
- शर्मा**,** आर. सी. (**1981).** *भारतीय शिलालेख और लिपियाँ***.** वाराणसी: चौखम्भा प्रकाशन।
- त्रिपाठी**,** कु. (**1982).** *भारतीय अभिलेखों का इतिहास***.** वाराणसी: भारतीय विद्या संस्थान।
- चक्रवर्ती**,** र. (**2018).** *मर्चेंट्स, मर्चेंडाइज़ एंड मर्चेंटमेन: कॉमर्स एंड कल्चर इन इंडिया***.** नई दिल्ली: प्राइमस बुक्स।
- शास्त्री**,** नी. क. (**1984).** *द कल्चर एंड हिस्ट्री ऑफ़ द तमिल्स***.** दिल्ली: एलाइड पब्लिशर्स।
- Bühler, G. (1895). *On the origin of the Indian Brahma alphabet*. Strassburg: Karl J. Trübner.
- Coedès, G. (1968). *The Indianized states of Southeast Asia*. Honolulu: University of Hawaii Press.
- Dani, A. H. (1997). *Indian palaeography*. New Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers.
- De Casparis, J. G. (1975). *Indonesian palaeography*. Leiden: Brill.
- Filliozat, J. (1978). The expansion of Indian scripts in Southeast Asia. In G. C. Pande (Ed.), *India and the world* (pp. 237–256). New Delhi: ICCR.
- Falk, H. (2006). The script of the Asokan inscriptions. *Silk Road Studies*, 4, 45–75.
- Ghosh, S. (2015). *Epigraphy and the emergence of early historic polities in India*. New Delhi: Primus Books.
- Hall, K. R. (1985). *Maritime trade and state development in early Southeast Asia*. Honolulu: University of Hawaii Press.

- Huntington, S. L. (1985). *The art of ancient India: Buddhist, Hindu, Jain*. New York: Weatherhill.
- Kulke, H. (2004). Indianization—a historical process. In S. Mittal & G. Thursby (Eds.), *The Hindu world* (pp. 123–143). London: Routledge.
- Krom, N. J. (1927). *Barabudur: Archaeological description*. The Hague: Martinus Nijhoff.
- Mahadevan, I. (2003). *Early Tamil epigraphy: From the earliest times to the sixth century A.D.* Cambridge, MA: Harvard University Press.
- Majumdar, R. C. (1955). *Ancient Indian colonies in the Far East* (Vol. 1). Calcutta: Oriental Books.
- Ray, H. P. (2003). *The archaeology of seafaring in ancient South Asia*. Cambridge: Cambridge University Press.
- Salomon, R. (1998). *Indian epigraphy: A guide to the study of inscriptions in Sanskrit, Prakrit, and the other Indo-Aryan languages*. Oxford: Oxford University Press.
- Singh, U. (2008). *A history of ancient and early medieval India: From the Stone Age to the 12th century*. Delhi: Pearson Education.
- Sircar, D. C. (1965). *Indian epigraphy*. Delhi: Motilal Banarsidass.
- Skilling, P. (2009). Scripts, scriptures and Sanskrit in early Southeast Asia. *Journal of the Siam Society*, 97, 87–110.

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****